जोबनेर कृषि

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय

जोबनेर, जिला–जयपुर (राज.) 303 329

अप्रेल, 2020 | वर्ष : 5 | अंक : 1 | प्रति अंक मूल्य 5 रुपये | वार्षिक शुल्क : 50 रुपये

प्रोफेसर जीत सिंह संधू ने श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के कुलपति पद पर दिनांक 28 सितम्बर, 2019 को कार्य ग्रहण किया। प्रो. संधू ने वर्ष 1978 में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से स्नातक किया और 1982 में मास्टर और 1985 में प्लान्ट ब्रीडिंग में पीएचडी की उपाधि प्राप्त की।

प्रो. संधू ने भारत के सर्वोच्च कृषि अनुसंधान संगठन, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (ICAR), नई दिल्ली में उप महानिदेशक (फसल विज्ञान) और सहायक महानिदेशक (बीज) के रूप में कार्य किया। उन्होंने उपरोक्त पदों के बीच कृषि आयुक्त, भारत सरकार के रूप में भी कार्य किया। प्रो. संधू ने विभिन्न दलहनी फसलों की 23 किस्में विकसित की हैं और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक जर्नल में 229 शोध लेख प्रकाशित किए हैं। प्रो. संधू ने राष्ट्रपति, इंडियन सोसायटी ऑफ जेनेटिक्स एण्ड प्लान्ट ब्रीडिंग, नई दिल्ली, अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, इंडियन सोसायटी ऑफ पल्सेस रिसर्च एण्ड डवलपमेंट (ISPRD), कानपुर, उपाध्यक्ष, इंडियन सोसायटी ऑफ प्लांट जेनेटिक रिसोर्स के रूप में भी पेशेवर समाजों की सेवा की। प्रो. संधू ने भारत के कृषि विश्वविद्यालयों के प्रबंधन की शपथ संयुक्त कार्य योजनाओं और अनुसंधान रणनीतियों को विकसित करने के लिए ACIAR, ICRISAT, IRRI, BISA और BRICS आदि की विभिन्न संचालन समितियों के सदस्य भी थे।

उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का हिस्सा बनने वाले दर्जन से अधिक विदेशी देशों का दौरा किया हैं। प्रो. संधू को नेशनल एकेडमी ऑफ एग्रीकल्चर सांइसेज (एनएएएस), नई दिल्ली ने कृषि में उत्कृष्ट वैज्ञानिक योगदान के लिए फैलोशिप से सम्मानित किया। प्रो. संधू को इनके यागदान के लिए विधिवत मान्यता प्राप्त संगठनों से जिसमें GCIAR'S King Baudouin अवार्ड 2002 और ICRIST DOREEN MASHLER 2002 पुरस्कार, ICRISAT के राष्ट्रीय सहयोगी के रूप में PAU टीम अवार्ड और सम्मान दिया गया। पंजाब एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी, लुधियाना द्वारा इनके अनुसंधान और विकास और भारतीय दलहन अनुसंधान के लिए ISPRD पुरस्कार दिया गया।

जीवामृत एवं बीजामृत द्वारा कम लागत में गुणवत्तायुक्त फसल उत्पादन

डॉ. डी. के. जाजोरिया, डॉ. प्रियंका कुमावत एवं मधु चौधरी

सस्य विज्ञान विभाग, एस. के. एन. कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

शोध छात्र, विद्यावाचस्पति, राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान दुर्गापुरा (जयपुर)

परिचय

जैविक खादों का उपयोग खेती में धीरे–धीरे घट रहा है जिसके कारण प्रति इकाई आदान से उत्पादकता घट रही है। जैविक खादों का कम या न के बराबर उपयोग तथा केवल उर्वरकों के उपयोग से खेत की मिट्टी में सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या घट रही है तथा मृदा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। इसका सीधा असर पशु एवं मानव स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। बाजार में कई प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु कल्चर उपलब्ध है जो मृदा में जीवाणुओं की संख्या बढ़ाने तथा जैविक पदार्थों को सड़ाने के काम आते हैं लेकिन इनकी गुणवत्ता को सटीक से जानना मुश्किल है अतः कम लागत पर किसान स्वयं गोबर तथा गौमूत्र के उपयोग से सूक्ष्म जीवाणुओं के साथ–साथ मृदा एवं पौध स्वास्थकारक जैविक घोल तैयार कर सकता है।

1. जीवामृत

यह एक प्रकार का जीवाणु संवर्धन कल्चर है जो कि गौमूत्र तथा गोबर से तैयार किया जाता है। जीवामृत यह एक लाभदायक सूक्ष्म जीवों का भण्डार है। जीवामृत में लाभदायक सूक्ष्मजीव (एजोस्पाइरिंलम, पी एस एम,स्यूडोमोनास, ट्राइकोडर्मा, यीस्ट और मोल्ड) बहुतायत में पाये जाते हैं। इसके उपयोग से भूमि में विद्यमान लाभदायक जीवाणु एवं केंचुए भी आकर्षित होते हैं। ये कार्बनिक अवशेषों के सड़ाव में सहायता करते हैं। परिणामस्वरूप

मुख्य सूक्ष्म पोषक तत्वों, एन्जाइम्स और हारमोन को संतुलित मात्रा में पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

जीवामृत हेतु सामग्री

- गोबर– 10 किलोग्राम
- देशीगाय का गोमूत्र– 5 से 10 लीटर
- गुड़– 1 किलोग्राम या 4 लीटर गन्ने का रस
- दलहन का आटा / बेसन– 500 ग्राम
- उर्वर मिट्टी– 1 किलोग्राम (जिसमें किसी भी प्रकार के रसायन का उपयोग न किया गया हो)
- पानी– 180 लीटर
- पात्र–प्लास्टिक ड्रम या सीमेन्ट का हौद

जीवामृत बनाने की विधि

सर्वप्रथम उपलब्ध प्लास्टिक की टंकी या सीमेन्ट की हौदी में 50 से 60 लीटर पानी लेकर 10 किलोग्राम गोबर को लकड़ी से अच्छी तरह मिलायें। इसके बाद उपलब्धतानुसार 5 से 10 लीटर गोमूत्र मिलाया जाये।मिश्रण में एक किलोग्राम उर्वर मिट्टी जिसमें रसायन खादों का प्रयोग न किया गया हो अथवा वट वृक्ष के नीचे की मिट्टी मिला दी जाये। टंकी में उपलब्ध जीवाणुओं के भोजन हेतु 1 किलोग्राम बेसन, 1 किलोग्राम गुड़ या 4 लीटर गन्ने के रस के घोल में और अतिरिक्त पानी मिलाकर 200 लीटर तैयार किया जाये तथा टंकी को जालीदार कपड़े से ढक दें। मिश्रण को प्रत्येक दिन जीवाणुओं के वातन (स्वासन) के लिए दिन में दो बार सुबह शाम लकड़ी से घोल को हिलाए। 48 घंटे बाद जीवमृत तैयार हो जाएगा तथा तैयार जीवामृत को 5 से 6 दिन के अन्दर प्रयोग करें।

जीवामृत का प्रयोग विधि

- पलेवा और प्रत्येक सिंचाई के साथ 200 लीटर जीवामृत एक एकड़ में बहते पानी पर बूँद बूँद टपका दें।
- फसलों पर जीवमृत के 10 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। छिड़काव करने से पौधों को उचित पोषण मिलता है और दाने / फल स्वस्थ होते हैं।
- अच्छी प्रकार छानकर टपक या छिड़काव (ड्रिप या स्प्रिंकलर) सिंचाई के माध्यम से प्रयोग करें 200 लीटर जीवमृत 1 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए पर्याप्त है।
- फलवृक्षों में वृक्ष के चारों तरफ 25 से 50 सेंटीमीटर नाली खोदकर जैविक अवशेष भरकर जीवामृत से तर करें। एक ड्रम 1 हेक्टेयर क्षेत्रफल हेतु पर्याप्त है।

जीवामृत का प्रभाव

खेत में उपलब्ध जैव अवशेष के विघटन हेतु एक प्रभावी जैवनियामक है। पौधों की आवश्यकतानुसार मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने एवं कीट और व्याधि निवारण क्षमता में सहायक है और इसके प्रयोग से भूमि की उर्वरता तथा फसल उत्पादकता में वृद्धि होती है।

2. बीजामृत

बीजामृत बीज शोधन हेतु प्रयोग किया जाता है। बीजशोधन का अर्थ है बीजों को बीजजनित एवं मृदाजनित रोगों से बचाव हेतु तैयार करना।बीजशोधन से बीजों के अंकुरित होने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। बीजशोधन से बीज जल्दी और ज्यादा मात्रा में उगते है, जड़ें तीव्र गति से बढ़ती है और भूमि से पौधों में बीमारियों का प्रकोप नहीं होता है। बीजामृत के साथ इलाज किए जाने वाले बीज में अधिक प्रतिरक्षा होती है, जिससे उनके अंकुरण की संभावना भी बढ़ जाती है।

बीजामृत के लिए आवश्यक सामग्री (100 किलोग्राम बीज के लिए)

- 20 लीटर पानी
- गौ–मूत्र (पानी के प्रत्येक लीटर के लिए 250 मिलीलीटर)
- गाय गोबर (पानी के प्रत्येक लीटर के लिए 250 ग्राम)
- चूना (प्रति लीटर पानी में 2.5 ग्राम)
- 100–150 ग्राम मेड़ की मिट्टी जिसमे कोई पत्थर नहीं हो।

बनाने की विधि

- 5 किलो देसी गाय के गोबर को कपड़े में बांध कर गाँठ बना ले फिर, इसे 20 लीटर पानी में 12 घंटे तक लटकाएं।
- एक लीटर पानी लें और इसमें 50 ग्राम चूना मिलाएं, इसे एक रात के लिए स्थिर रहनेदें।
- फिर अगली सुबह, देशी गाय के गोबर के गट्ठर को उस पानी में लगातार तीन बार निचोड़ें, ताकि गोबर का सारा सार उस पानी में जमा हो जाए।
- उस पानी के घोल में 100–150 ग्राम मिट्टी डालकर अच्छी तरह हिलाएं।
- अंत में उस घोल में 5 लीटर देसी गोमूत्र मिलाएं और चूने का पानी मिलाएं और इसे अच्छी तरह से हिलाएं।

भंडारण

बीजामृत को 48 घंटों के भीतर बीजशोधन के लिए इस्तेमाल कर लेना चाहिए। हालांकि इसे 7 दिनों तक रखा जा सकता है।

उपयोग

- 100 किलोग्राम बीज के लिए, बीजामृत को तैयार करने के लिए 20 लीटर पानी का उपयोग करें।
- जमीन पर बिछे प्लास्टिक पर बीजों को फैलाये उन बीजों पर बीजामृत छिड़के। बीजों को ऊपर निचे करके अच्छी तरह मिलाए और ध्यान रखें कि सभी बीज बीजामृतं से ढके हुए हो।
- दालों में (अरहर, उर्द, लोबिया आदि) जैसे द्विबीजपत्री बीजों का विशेष ध्यान रखें। क्योंकि ये बहुत नाजुक हैं, इसलिए इन्हें रगड़ना नहीं चाहिए। बस इन्हें डुबोएं और जल्दी से निकालकर सूखने दें।
- सोयाबीन और मूंगफली के बीज के लिए इस उपचार का उपयोग न करें क्योंकि उनके बीज पर बहुत पतली परत होती है, गीले होने के कारण बीज की परत क्षतिग्रस्त हो सकती है।
- बीजामृत उपचार के बाद बीज सूखने दें और फिर उन्हें बोएं।
- नर्सरी पौधों को प्रत्यारोपित करते समय जड़ को बीजामृत मिश्रण में डुबोए और फिर उन्हें खेतों में प्रत्यारोपित करें।

सब्जियों का मूल्य संवर्धन (वैल्यू एडिशन) – तकनीक, प्रतिबंध और समाधान

उदल सिंह, रवि कुमार मीना एवं मनोहरी लाल मीना
कृषि महाविद्यालय, लालसोट

वैश्विक स्तर पर सब्जियों के उत्पादन और विविध सब्जी–उत्पाद के कारोबार में व्यापक वृद्धि हुई है। बढ़ती आय, घटते परिवहन लागत, नई उन्नत प्रसंस्करण तकनीक और वैश्वीकरण ने इस विकास के लिए प्रेरित किया है। लेकिन यह वृद्धि, आपूर्ति श्रृंखला प्रबन्धन और प्रसंस्करण के धीमी विकास से मेल नहीं करता है। इस क्षय को कम करने , विस्तार और विविधकरण के लिए प्रोसेसिंग सबसे प्रभावी उपाय हैं। प्रसंस्करण गतिविधियां, ताजा उपज के लिए बाजार के अवसरों में वृद्धि करते हुए मूल्य वृद्धि करते हैं तथा पश्च कटाई हानियों को कम करते हैं।

प्रसंस्करण, खेती की आय में वृद्धि, ग्रामीण रोजगार सृजन और विदेशी मुद्रा उत्पन्न करके कृषि उत्पादन प्रणालियों की व्यवहार्यता, लाभप्रदता और स्थिरता में सुधार लाता है। भारत विश्व में सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। (184 मिलियन टन : विश्व उत्पादन का 14 प्रतिशत) (एनएचबी 2014)। परन्तु फलों और सब्जियों का प्रसंस्करण विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है जबकि मूल्य संवर्धन 7 प्रतिशत है (चीन में 20 प्रतिशत और यूनाइटेड किंगडम में 88 प्रतिशत)। प्रसंस्करण (मूल्य संवर्धन सहित) में जीडीपी, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन और उद्यमियों के लिए व्यवसाय के अवसरों में योगदान करने की जबरदस्त क्षमता है। भविष्य में 35 प्रतिशत मूल्य वृद्धि और 10 प्रतिशत प्रोसेसिंग के लक्षय को प्राप्त करने के लिए विभिन्न चरणों में आने वाली बाधाओं को ध्यान देने की आवश्यकता है।

मूल्य संवर्धन का मतलब है किसी उत्पाद या सेवा के ग्राहक मूल्य में वृद्धि होना। यह ग्राहक की जरूरतों और धारणाओं द्वारा संचालित एक उत्पादन / विपणन रणनीति है। मूल्य संवर्धित कृषि के उदाहरण हैं खाद्य प्रसंस्करण, सुखाने, डिब्बा बन्दी, रस निकालना, अनूठी पैकेजिंग, लेबलिंग और मार्केटिंग। मूल्य संवर्धन उपभोक्ता के लिए अधिक पोषक उत्पाद है जबकि उत्पादक के लिए प्रसंस्करण और उत्पाद के वितरण में भागीदारी हैं यह ऊध्वाधर एकीकरण के रूप में जान जाता है। मूल्यवर्धित विपणन कई पारंपरिक उत्पादकों के लिए एक अपेक्षाकृत नई अवधारणा है जिसमें पूंजी, सामूहिक कार्य और खाद्य उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों का एकीकरण है।

मूल्य संवर्धन का महत्व

संघीय कृषि नीतियां , बदलते उपभोक्ता विकल्प और कृषि वस्तुओं के वैश्वीकरण ने वैकल्पिक उत्पादन/विपणन रणनीतियों को आवश्यक बनाया है। आज के खाद्य उपभोक्ता बेहतर स्वाद, अधिक पोषक, ज्यादा विविध और सुविधाजनक उत्पाद की मांग करते हैं। मूल्य वर्धित कृषि में शामिल होने से किसानों को शुद्ध कृषि लाभ में बढ़ोतरी होगी जबकि खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में बिचौलियों की भागीदारी कम हो जायेगी।

पारम्परिक सब्जी प्रसंस्करण तकनीकियाँ

पारम्परिक प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों में उच्च स्तरीय, मध्यवर्ती और कारीगरी तकनीक शामिल है। परम्परागत प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों जैसे कि शीत उपचार, सुखाने, थर्मल प्रसंस्करण (बॉटलिंग और डिब्बा बन्दी), निर्जलीकरण (नमक, ब्रिनिंग और कैडिंग) और किण्डवन को व्यापक रूप से कॉटेज, छोटे, मध्यम और बड़े उद्यमों द्वारा कृत्रिम, मध्यवर्ती और उच्च स्तर पर सब्जियों के प्रसंस्करण में प्रयोग किया जाता है। ज्यूस, किण्वित वाइन, शराब, कैंडीज, जमे हुए और सूखे जैसे प्रसंस्कृत उत्पाद इन प्रौद्योगिकियों का उपयोग करते हुए तैयार किये जाते हैं।

हालांकि ये प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों सब्जियों को सूक्ष्म जीवविद् स्थिर बनाने में आम तौर पर प्रभावी हें लेकिन वे उत्पाद के स्वाद, रंग और बनावट विशेषताओं को बदलते हैं।

हिमीकरण/फ्रीजिंग

यह तकनीक (ठीक से किये जाने पर) उत्पाद/खाद्य पदार्थों के आकार, बनावट, स्वाद और रंग में न्यूनतम परिवर्तन

करता है। माइनस 18 डिग्री सेल्सियस के तापमान पर संग्रहित सब्जियों में 12 महीनों तक अच्छी गुणवत्ता बनाए रखती हैं। उच्च ऊर्जा आवश्यकता (ठंड के संचालन के लिए) इस प्रकार की तकनीक की लागत एवं उत्पादों के मूल्य बढ़ाते हैं।

थर्मल प्रोसंसिंग

थर्मल प्रसंस्करण का जैम, जेली, डिब्बा बंद और बोतलबंद सब्जियों के उत्पादन में व्यापक रूप से प्रयोग होता है। इस तकनीक में असेपटेक प्रोसेसिंग सिस्टम (विसंक्रमित परतदार पैकेजिंग) का उपयोग किया जाता है जो उत्पाद की कीमत बढ़ाते हैं।

सुखाने की प्रौद्योगिकी

इस प्रौद्योगिकी में सौर सुखावक से लेकर नवीन प्रौद्योगिकी जैसे फ्रीज सुखावक, ड्रम सुखावक और स्प्रे सुखावक का उपयोग किया जाता है। सूखे उत्पादों में कम वजन परिवहन लागत का लाभ होता है। हालांकि ये तकनीक पौष्टिक मूल्य, रंग, स्वाद, सुगंध और बनावट में नुकसान करते हैं।

निर्जलीकरण उपचार

सब्जियों के सल्टिंग और ब्राइनिंग निर्जलीकरण के उपचार हैं जो ओसमेसिस के सिद्धांत पर आधारित है। इन प्रक्रियाओं में सब्जियों को बढ़ते ओसमाटिक दबाव के एक जलीय घोल (उच्च चीनी या नमक) में डाला जाता है। निर्जलीकरण उपचार सब्जियों के उत्तकों से एक सीमित ताप पर पानी को हटा देता है। इस तकनीक से उत्पाद की कीमत को कम करने के लिए सुखाने और हिमीकरण के साथ संयोजन में लागू किया जा सकता है।

किण्वन/फेरमेंटेशन

किण्वन खाद्य पदार्थों की धीमी जैव–संरक्षक प्रक्रिया है, जो सूक्ष्मजीवों या एंजाइम (सूक्ष्मजीव, पौधे या पशु मूल के) द्वारा उत्प्रेरित है। यह खाद्य संरक्षण /प्रसंस्करण का सबसे पुराना रूप है। उपयुक्त पोस्ट–किण्वन उपचारों की अनुपलब्धता के कारण कई किण्विन उत्पाद सीमित जीवन के होते हैं।

सब्जियों के आधुनिक प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी

सुविधाजनक और उच्च गुणवत्ता वाले, सुरक्षित, ताजा समान गुण वाले खाद्य पदार्थों के बढ़ते उपभोक्ता मांग के फलस्वरूप सब्जी प्रसंस्कीण में काफी नवीनता और विविधीकरण अविष्कार हुये हैं। नए उत्पाद जैसे छंटनी और पैक किये गए सेम, तैयार सलाद और पूर्व तैयार फ्राई मिक्स सुपर मार्केट और निर्यात व्यापार में तेजी से प्रवेश कर रहे हैं। यद्यपि इस प्रकार के मूल्य–वृद्धि में अपेक्षाकृत कम उत्पाद परिवर्तन की आवश्यकता होती है। परन्तु उत्पाद की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए उपकरण व प्रबंधन प्रणालियों में निवेश और खाद्य–सुरक्षा सिद्धांतों और प्रथाओं के कड़े पालन अनिवार्य हैं।

न्यूनतम प्रसंस्करण/मिनिमल प्रोसेसिंग

इस तकनीक में सब्जियों की हैडलिंग, प्रोसेसिंग, पैकेजिंग और वितरण अच्छा प्रबंधन प्रथाओं (जीएमपी) और हैजर्ड विश्लेषण और क्रिटिकल कंट्रोल पॉइंट (एचएसीसीपी) के उचित खाद्य–सुरक्षा सिद्धांतों के पालन के साथ किया जाता है। न्यूनतम प्रसंस्करण कार्य जैसे काटना, टुकड़े करना, छीलने इत्यादि से पौधे के ऊतकों को चोट पहुँचते हैं जिस कारण एंजाइमिक बदलाव शुरू होता है। वैरएिटल, शारीरिक–परिपक्वता और पूर्व–फसल घटक परिवर्तनों को और प्रभावित करते हैं। न्यूनतम प्रसंस्कृत उत्पादों की सूक्ष्मजीव स्थिरता और संवेदी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए एक बाधा दृष्टिकोण लागू किया गया है। इस दृष्टिकोण का बुनियादी सिद्धांत परिरक्षक कारकों द्वारा सूक्ष्मजीव के गतिविधि का निषेध करना है। कम ताप पर भण्डारण, हल्का गरम उपचार, पानी की गतिविधि पर नियंत्रण, उपयुक्त पैकेजिंग के जरिये रेडॉक्स क्षमता का नियंत्रण, सोर्बेट, बैंजोएट और एस्कॉर्बिक एसिड जैसे परिरक्षकों का उपयोग आमतौर पर न्यूनतम प्रसंस्करण में बाधाओं के तौर पर किया जाता है। प्रसंस्करण, पैकेजिंग, वितरण और खुदरा बिक्री के दौरान उपयुक्त गुणवत्ता का पानी और कोल्ड स्टोरेज न्यूनतम प्रसंस्करण की महत्वपूर्ण आवश्यकताएं हैं। न्यनूतम प्रोसेसिंग जिसमें बाधा अवधारणा का अनुप्रयोग किया जाता है एक सस्ती, ऊर्जा कुशल, सरल और संतोषजनक सब्जियों का मूल्य संवर्धन तकनीकी है।

गैर थर्मल प्रोससिंग प्रौद्योगिकी

गैर–थर्मल भौतिक प्रक्रियाएं जैसे उच्च तीव्रता स्पंदनयुक्त बिजली के क्षेत्र, उच्च तीव्रता स्पंदित प्रकाश, उच्च जल द्रव्य दबाव और भोजन विकिरण, न्यूनतम प्रोसेसिंग आदि भविष्य में उपयोग लिए जाने वाली संभावित तकनीकी हैं।

प्रसंस्करण ऑपरेटर द्वारा सामना किए जाने वाले मुद्दे और बाधाएं

बढ़ते शहरीकरण और वैश्वीकरण ने संसाधित सब्जी उत्पादों के भण्डारण, गुणवत्ता, सुविधा और सुरक्षा विशेषताओं की मांग बढ़ाई है। इन मानदंडों के अनुरूप पूरा कार्य करना सब्जी प्रसंस्करण में लगे छोटे और मध्यम उद्यमों (एसएमई) के लिए एक बड़ी चुनौती है। इनमें से कई उद्यम, तकनीकी, ढांचागत और संस्थागत कारकों के कारण जीएमपी, एचएसीसीपी प्रमाणीकरण, गुणवत्ता आश्वासन, लेबलिंग, पैकेजिंग और पर्यावरण मानकों के अन्तर्राष्ट्रीय मानकों का पालन करने में असमर्थ हैं।

निष्कर्ष

आधुनिक और पारंपरिक प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी के उपयोग से सब्जी क्षेत्र के भीतर वर्टिकल/खड़ी विविधीकरण के नए अवसर बनाए जा सकते है। इन अवसरों का लाभ लेने के लिए आवश्यक होगा कि उत्पादन क्षेत्र के साथ एक मजबूत सम्बन्ध विकसित किया जाए और उन रणनीतिक गठजोड़ों को बनाया और बढ़ाया जाए जिससे तकनीक और कौशल विकास उन्नत हो। साथ ही सरकार की नीतियों के समर्थन से उत्पाद प्रतिस्पर्धात्मक का बढ़ावा हो।

पशुओं के मुख्य संक्रामक रोग

डॉ. सुरेशचन्द कांटवा, डॉ. सूपर्ण सिंह शेखावत, डॉ. सन्तोष देवी सामोता, श्रीमति शशी वर्मा, डॉ. रामप्रताप, डॉ. योगेन्द्र कुमार मीणा एवं डॉ. सरदार मल यादव

कृषि विज्ञान केन्द्र, गोनेड़ा-कोटपूतली

हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है। यहां के अधिकांश निवासी गांवो में रहते है और कृषि व पशुपालन पर मुख्य रूप से निर्भर करते है। कृषि के पश्चात् पशुपालन ही एक ऐसा व्यवसाय है जिस पर बहुत अधिक ग्रामीण आश्रित रहते है। हमारे प्रमुख पालतु पशु में गाय, भैस, भेड़ , बकरी, सुअर और मुर्गी इत्यादि आते हैं। इनसे हमें दूध, मांस, ऊन, अण्डा, खाल व खाद प्राप्त होती है। इस प्रकार पशुओं से हमारे राष्ट्र को बहुत अधिक मात्रा में खाद्य पदार्थों की आपूर्ति होती है जो देश की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ बनाए रखने मे भी सहायक होती है। पशुओं के रोगो से निजी परिवारों तथा पूरे राष्ट्र को अपार हानियां होती है। ये हानियां मुख्यत पशुओं की मृत्यु, अस्वस्थता दर, परजीविता, कुपोषण , कुप्रबन्ध, बन्धयता, गर्भपात आदि से होती है। रोगो से बचाव, संगरोध, ओषधियों और उपचार मे बहुत अधिक धन खर्च होता है। समस्त पशु रोगो में संक्रामक रोगो का सर्वाधिक महत्व है, क्योकि इन रोगो के प्रकोप से बहुत अधिक हानि होती है। हमारे देश में प्रति वर्ष पशु गलघोटू, लंगडी, खुरपका मुहपका, थनैला आदि रोगो के शिकार होते है। कुछ रोगों जैसे थनैला, खुरपका मुहपका में पशुओं की मृत्यु तो नहीं होती है परन्तु अधिक अस्वस्था दर और पशुओं के निर्बल होने के कारण उनका उत्पादन और कार्यक्षमता घट जाती है।

थनैला (मेस्टाइटिस)

थनैला दुधारू पशुओं में होने वाला एक संक्रामक एवं आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रोग है।

थनैला रोग के कारण :- यह रोग बहुत से विषैले जीवाणु, विषाणु, फफूँद, माइकोप्लाज्मा तथा रिकेट्सिया से होता है।

संक्रमण :-थनैला रोग संक्रमण द्वारा एक पशु से दूसरे पशु मे अथवा पशु से मनुष्यो में भी फैल सकता है। यह छूतदार बीमारी पशुओ को गंदे, गीले व कीचड भरे स्थान पर बांधने से होती है । थन में चोंट लगने, बछड़े द्वारा दूध पीते समय दांत लगने या गलत तरीके से दूध निकालने से इस रोग की संभावना बढ़ती है। इसके संक्रमण को फैलाने में ग्वाले के गंदे हाथ व कपड़े, दूध के बर्तनों का साफ न होना व संक्रमित दूध निकालने की मशीन का भी काफी योगदान होता है।

रोग के लक्षण :-इस बीमारी का प्रमुख लक्षण रोगी पशु के दूध में परिवर्तन आना है। सबसे पहले रोगी पशु के दूध में फाइब्रिन के थक्के बन जाते है जिससे दूध छिछड़े युक्त आता है। दूध के रंग में परिवर्तन हो जाता है। यदि रोग अधिक तीक्ष्ण है तो अयन व थनों के आस-पास सूजन आ जाती है व दर्द होता है। यदि समय पर उपचार न हो तो थन कड़ा व अंततः खराब हो जाता है। इसके अतिरिक्त दूध फट सा जाता है और फिर खून व मवाद पड़ जाता है। कभी-कभी दूध पानी जैसा पतला हो जाता है।

रोग की रोकथाम :-

- पशुशाला के फर्श को सूखा रखे, समय-समय पर चूने का छिड़काव करे और मक्खियों का नियंत्रण करें। दूध दुहने के लिए पशु को दूसरे स्वच्छ स्थान पर ले जाएं।
- थनो को बाहरी चोट लगने से बचाए।
- दूध दुहने से पहले थनो को अच्छी तरह से साफ पानी से धुलना न भूले।
- थनैला बीमारी से ग्रस्त थन का दूध अंत मे अलग बर्तन में दूहे तथा उपयोग में न लाए।
- दूध पूरा दुहें।
- घर में स्वस्थ पशुओं का दूध पहले व बीमार पशुओं का दूध सबसे बाद में दुहे।
- दूध दुहने के बाद थनों को कीटनाशक घोल जैसे - आइडोफोर या लाल दवा में डुबोयें या घोल का स्प्रे करें।
- दूध दुहने के पश्चात् थन नली कुछ देर तक खुली रहती है, इस समय पशु फर्श पर बैठ जाने से रोग के जीवाणु थन नली के अन्दर प्रवेश पाकर बिमारी फैलाते हैं। अतः दूध दुहने के तुरंत बाद दुधारू पशुओं को चारा या पशु आहार दें। जिससे पशु कम से कम आधा घण्टा फर्श पर न बैठें।
- दुधारू पशुओं के दुध की समय-समय पर (माह में 2 बार) मेस्टेक्ट कागज से जाँच करते रहे। पशु के रोग से प्रभावित थन को दवा चढवाए।

उपचार :-थनैला रोग का निदान शीघ्र हो जाने में पशु का इलाज

हो जाता है। यदि जीवाणु अयन के अन्दर पहुँच जाते है तो इसका इलाज काफी कठिन हो जाता है। इसका उपचार निम्नानुसार किया जा सकता है।

- रोग ग्रसित अयन पर आयोडिन मल्हम, सुमेग आदि लगाकर मालिस करने से लाभ होता है, पानी में बोरिक एसिड या नीम की पत्तियां डालकर भी अयन को गुनगुने पानी से सेका जा सकता है।
- इसके उपचार के लिए अन्तः स्तनीय पेटेन्ट दवाइयॉ जैसे मेस्टीलेप, टिलोक्स, पेनडिस्ट्रीन एस. एच, मेमीटेल, मेस्टालॉन, टेरामाईसिन आदि का प्रयोग करने से काफी लाभ होता है।

खुरपका एवं मुँहपका (एफ. एम. डी.)

खुरपका मुँहपका के कारण पशुओं के मरने की सम्भावना बहुत कम होती है परन्तु उनमें अस्वस्थ्य होने की दर ज्यादा होने से उनके उत्पादन पर पड़ने वाले विपरीत प्रभाव के कारण इस बीमारी का बहुत ज्यादा आर्थिक महत्व है।

बीमारी का कारण :- यह एक प्रकार की संक्रामक(छूत की बीमारी) रोग है। जो एक पशु से दुसरे पशु में तेजी से फैलता है। यह बीमारी विषाणु (वायरस) के कारण पशुओं में होती है।

संक्रमण :-

- इस रोग से पशु की लार जब किसी स्वस्थ्य पशु के बहुत निकट सम्पर्क से लग जाती है तो उस पशु को भी यह बीमारी हो जाती है।
- दूषित चारा, पानी, नॉद, दूध व दूध से बने पदार्थ, बर्तन व देखभाल करने वाले व्यक्ति के दूषित कपड़ों से तुरन्त छूत से लग जाती है।

बीमारी के लक्षण :-

- पशु के मुँह के अन्दर, गालों पर, जीभ पर, होठ व तालू पर, मसूडों पर, नथुनों पर आदि पर छाले हो जाते हैं।
- छाले होने के कारण मुँह से झागदार लार बहने लगती है और होंठों से चिपचिपाहट की आवाज होती है।
- खुरों के बीचों बीच छाले होने के कारण पशु लंगड़ाकर चलता है।
- पशु सुस्त होकर गर्दन नीची कर खडा हो जाता है तथा दुधारू पशुओं में दूध उत्पादन घट जाता है।

रोकथाम :-

- इस बीमारी से बचने का एक सबसे कारगर तरीका टीकाकरण है। वर्ष में दो बार टीकाकरण करायें। एक मार्च – अप्रैल में व दूसरा अक्टूबर – नवम्बर माह में।
- बीमार पशुओं को स्वस्थ्य पशुओं से अलग रखें और इन्हें सूखे व साफ सुथरे स्थान पर रखें। चूंकि यह एक संक्रामक रोग है व एक पशु से दूसरे पशु में बहुत तेजी से फैलता है। अतः इस बीमारी से बचने के लिए जिस गाँव में बीमारी फैली है उसके आस पास के प्रत्येक गाँव में 3 – 4 मीटर लम्बी, 01 मीटर चौडी व 30 सेमी गहरी पादस्नान बनवानी चाहिए। इसमें 01 प्रतिशत नीला थोथा का घोल भरकर सुबह व शाम को पशुओं को इसमें से निकालना चाहिए। पादस्नान ऐसी जगह बनाये जहाँ से सारे गाँव के पशु निकलते हों।
- पशुशाला को गर्म पानी में 4 प्रतिशत कपड़ा धोने का सोडा (कास्टिक सोडा) से धोना चाहिए।

उपचार :-चूंकि यह वायरस जनित संक्रामक रोग है अतः इसको रोकने के लिए निम्नलिखित उपचार किये जा सकते है –

- रोगी पशु के मुँह के छालों को किसी अच्छे एन्टीसेप्टिक लोशन जैसे –बोरिक एसिड, सुहागा, फिटकरी आदि के घोल से धोना चाहिए। इसके बाद एक भाग सुहागा 4 भाग शहद मिलाकर छालों पर लेप करने से शीघ्र आराम मिलता है।
- पैरों के छालों व घावों को पानी में 01 प्रतिशत लाल दवा या फिनायल के घोल से धोने पर भी फायदा होाता है।
- रोगी पशुओं को दिया जाने वाला आहार पौष्टिक, मुलायम व पाचक होना चाहिए।

गलघोटू

यह बीमारी एक जानलेवा संक्रामक बीमारी है जो प्रायः वर्षाकाल में फैलती है।

बीमारी का कारण :-यह संक्रामक रोग जीवाणु के द्वारा होता है। बाढ ग्रसित क्षेत्रों में तथा पानी जमाव वाले क्षेत्रों में इस बीमारी के कीटाणु ज्यादा समय तक रहते है।

संक्रमण :-दूषित पानी व चारे के द्वारा यह रोग फैलता है। बीमार पशु के स्वस्थ्य पशु के निकट सम्पर्क में आने से फैलता है।

लक्षण :-

- अचानक तेज बुखार आता है, आँखें लाल हो जाती है और पशु कांपने लगता है। पशु खाना पीना व जुगाली करना बन्द कर देता है।
- दुधारू पशुओं में अचानक दूध उत्पादन घट जाता है।
- पशु के जबडों और गले के नीचे सूजन आ जाती है तथा सांस लेने में कठिनाई होती है और घुर्र–घुर्र की आवाज आती है।
- जीभ सूज जाती है और बाहर निकल आती है तथा लगातार लार टपकती रहती है।
- रोगी पशु में उपरोक्त लक्षण दिखाई देने के 1–2 दिन के भीतर ही उसकी मृत्यु हो जाती है।

रोकथाम :-

- इस बीमारी की रोकथाम के लिए वर्षा ऋतु से पहले यानि मई – जून में प्रति वर्ष टीकाकरण करवाना चाहिए।
- रोगी पशु को स्वस्थ पशु से अलग रखें तथा दाना, चारा, पानी भी अलग रखें।

❖ मृत पशु द्वारा छोडे गये चारे व दाने को जलाकर नष्ट कर दें।
❖ पशु आवास को जीवाणु नाशक (लाल दवा) के घोल से धोना चाहिए।

उपचार :-पशु चिकित्सक से उपचार करायें।

लंगडी बुखार(ब्लैक क्वार्टर)

इस रोग को एक टंगिया, चुरचुरिया, फड़सूजन आदि नामों से भी जाना जाता है। यह संक्रामक व जीवाणु से होने वाली बीमारी है। यह रोग तीन वर्ष तक के पशुओं में अधिक होता है।

संक्रमण :-दूषित चारागाहों पर स्वस्थ्य पशुओं के चरने से इस बीमारी का जीवाणु घास द्वारा पशु में प्रवेश कर जाता है। यदि पशु के शरीर पर कोई घाव या खरोंच हो तो इनसे भी जीवाणु शरीर में प्रवेश कर पशु को बीमार कर देते हैं।

लक्षण :-

❖ अचानक तेज बुखार आता है। पिछले पुट्ठों पर सूजन आती है जो छूने से गर्म होती है इस सूजन में दर्द होता है और पशु लंगड़ाने लगता है । कभी–कभी गले व पीठ पर सूजन व दर्द होता है।
❖ लक्षणो के आने के 1–2 दिन में पशु की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के समय बुखार खत्म होने लगता है। सूजन भी ठण्डी पड़ जाती है और उसमें गैस होने के कारण दबाने पर चुर्र चुर्र की आवाज आती है।

रोकथाम :-

❖ इस बीमारी का टीकारकण भी मई – जून (वर्षा ऋतु से पूर्व) में होता है।
❖ स्वस्थ्य पशुओं को उन चारागाहों से दूर रखना चाहिए। जहाँ रोग का संक्रमण हुआ हो।

उपचार :-रोग की प्रारम्भिक अवस्था में प्रौढ़ पशुओं को पेनिसिलीन और एण्टी लंगडी का इन्जेक्शन दिया जा सकता है।

टिड्डी का प्रकोप एवं नियन्त्रण

डॉ. बी.एल. जाट (आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, कीट विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर), अर्जुन लाल चौधरी (विद्यावाचस्पति) एवं शिवानी चौधरी (स्नातकोत्तर) श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

टिड्डी एक अंतरराष्ट्रीय बहुभक्षी कीट है जो सभी फसलों व पेड पौधों को हानि पहुंचाती है। इस कीट का प्रकोप वातावरण की अनुकुल अवस्था में ही होता है। टिड्डी की विभिन्न प्रजातियों पाई जाती है लेकिन रेगिस्तनी टिड्डी सबसे ज्यादा विनाशकारी होती है। यह विनाशकारी कीट अफ्रीका के पश्चिमी तट से भारत तक के विशाल क्षेत्र में पाया जाता है। इस कीट का प्रकोप मोरोक्को, ईथोपिया, केन्या, ईराक, ईरान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान एवं भारत के कृषि क्षेत्र में अधिक होता है। भारत में इस कीट का प्रकोप पश्चिमी राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा के कुछ क्षेत्रों में अधिक होता है। राजस्थान में टिड्डी का दल पाकिस्तान व अफगानिस्तान से होकर आता है।

टिड्डियों में एकल व सामूहिक दो प्रकार की अवस्थाएं होती है। एकल टिड्डियों को अनुकुल अवस्था मिलने पर सामूहिक संख्या में अण्डे देती है जिनका शीघ्र ही सामूहिक दल बनकर आक्रमणकारी रू

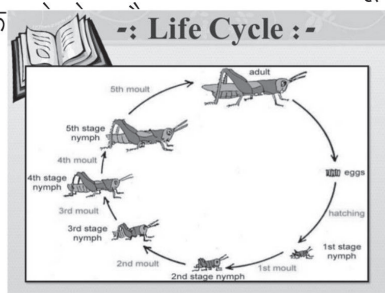

जीवन चक्र :-टिड्डी के जीवनचक्र की तीन अवस्थायें होती है। अण्डा, शिशु (हॉपर्स) एवं प्रौढ़ (वयस्क)

अण्डा:-टिड्डी की वयस्क अवस्थ मैंथुन के बाद शीघ्र ही रेतिली मिट्टी (5–10 सेमी गहराई) में अण्डे देने लगती है। मादा टिड्डियां अण्डा देने से पहले झुंड मे इकट्ठी हो जाती है तथा एक टिड्डी करीब पांच गड्डों में 500–600 अण्डे देती है। (100–200 अण्डें प्रति गड्डा) अण्डे चावल के समान नारंगी पीले रंग के होते है जो बाद में भूरे रंग के हो जाते है। टिड्डी अण्डों पर सफेद द्रव छोडती है जिससे अण्डों पर पानी नहीं पहुंचता है। अण्डों को अनुकुल नमी व तापमान मिलने पर 10–30 दिन में उनसे शिशु निकलता है।

शिशु :-शिशु की पांच अवस्थाएं होती है जिसको फाका कहा जाता है। इसका रंग छोटी अवस्था में काला गुलाबी लाइनदार व बडी अवस्था में काला पीला लाईनदार होता है। छोटी अवस्था में यह जमीन पर झुंड में चलकर फसलों व वनस्पतियों को खाते है। शिशु उछलकर व चलकर काफी दूरी तक चले जाते है। शिशु से वयस्क बनने में गर्मियों में 20–25 दिन लगते है।

वयस्क :- टिड्डी की छठी अवस्था को वयस्क (प्रौढ़) कहते है। इस अवस्था का रंग गुलाबी होता है। इसका शरीर व पंख पहले कोमल होते है जो बाद में कठोर हो जाते है तथा इसका उदर काफी बढा व पीले रंग को हो जाता है। पीले रंग की टिड्डियां 10 दिन में ही अण्डे देना आरंभ कर देती है।

भारत में टिड्डियों का दल मई–जून में पाकिस्तान की सीमा से होता हुआ आता है तथा दूसरा दल वर्षा के साथ जुलाई में आता है। यह दल राजस्थान और आस पास के रेगिस्तानी भागों में अण्डे देते है। टिड्डियां 2–3 बार अण्डे देती है। इनका अगस्त माह में झुण्ड तैयार हो जाता है। सर्दी में वर्षा होने पर भी इनका प्रजनन हो जाता है। टिड्डियों का दल सूर्यास्त के समय पेड पौधों पर बढ़ता है तथा अधिक संख्या में होने पर जमीन पर भी बैठ जाता है और टिड्डियां पत्तियों को खाने लगती है। सूर्योदय के समय

यह जमीन पर बैठकर उड़ने लगती हैं तथा फसलों को भारी मात्रा में नुकसान पहुंचाती है। टिड्डी दल बाद में उड़कर दूसरे क्षेत्रों में करीब 30–100 किलोमीटर की दूरी पर हवा के रूप के साथ 18–24 किलोमीटर/घंटा की रफ्तार से चला जाता है।

टिड्डियां आक धतुरा, नीम, शीशम के अलावा सभी फसलों व पेड पौधों को भारी मात्रा में पत्तियां, टहनियां, फलियां, फल आदि खाकर नुकसान पहुंचाती है। इसका समय पर नियंत्रण नहीं होने पर अकाल की स्थिति आ जाती है।

नियंत्रण :-टिड्डी दल के नियंत्रण के लिए सबसे आवश्यक इनकी निगरानी रखना है। इसकी रोकथाम इसके प्रजनन क्षेत्र में मादा द्वारा अण्डे देने की अवस्था व अण्डे से शिशु निकलने की अवस्था में आसानी से किया जा सकता है।

प्रजनन क्षेत्र में खाईयां खोदकर शिशुओं को झाडु से एकत्रित करके खाईयों में डालकर कीटनाशकों द्वारा आसानी से मार सकते है। अण्डे देने की अवस्था में मादा 2–3 दिन तक एक ही स्थान पर रहती है जिन पर कीटनाशकों का प्रयोग करके मार सकते है। अतः अनकी निगरानी रखना बहुत ही आवश्यक है इनके लिए FAO कार्य करता है। भारत में LWO इसके लिए कार्य कर रहा है। राजस्थान में LWO का मुख्यालय जोधपुर में है।

टिड्डी दल आने पर बचाव के कार्य :–

टिड्डी दल के पडाव व फसलों पर निम्न कीटनाशकों का छिड़काव करना चाहिए।

1. क्लोरोपायरीफॉस 50EC
2. डेल्टामेथ्रिन 2.5 EC
3. लेमडा साईहेलथ्रिन 5EC
4. मैलाथियान 50EC

टिड्डियों के उडते हुए दल पर कीटनाशकों का छिड़काव किया जा सकता है। इसके लिये ड्रोन व हेलीकोप्टर काम में ले सकते है।

अन्य उपाय :-

1. खडी फसलों में पीपे व ड्रम बजाकर तेजी से आवाज करनी चाहिए।
2. झाडू व कंटीली छडियों से मारकर भगानी चाहिए।
3. रात्रि के समय मसाल जलाकर इनको मारना चाहिए।
4. खेतों में टायर, कचरा आदि जलाकर धुआं करनी चाहिए।
5. कपडे लहराकर उड़ानी चाहिए।
6. फसल पर फव्वारे चलाने से भी टिड्डियां दूर भाग जाती है।

निदेशक की कलम से

जैविक खेती अपनाकर फसल दुगुनी करें

प्रो. बी.एल. ककरालिया
प्रसार शिक्षा निदेशक

प्रिय किसान भाईयों,

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर में जैविक खेती के विभिन्न अवयवों पर अनुसंधान कार्य कर शिक्षा एवं प्रसार के जरिए कृषि क्षेत्र को रोजगारोन्मुखी बनाने हेतु आवश्यक पहल की है। विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ देश में अनाजों की कमी होती जा रही है। आजकल मौसम की विषम परिस्थितियाँ भी फसलों के लिए अनुकूल नहीं है। जिससे पहले की तरह किसान फसल उत्पादन लेने में भी सक्षम नहीं है। आजकल किसान फसल उत्पादन के लिए ज्यादा से ज्यादा रासायनिक खाद, जहरीले कीटनाशक पदार्थों का उपयोग करने लगे हैं जो कि मनुष्य के स्वास्थ्य और मिट्टी दोनों के लिए हानिकारक है। इसी के साथ–साथ वातावरण भी प्रदूषित होता जा रहा है। आप सभी इन चीजों को रोक कर यदि कृषि में जैविक तरीकों से खेती करें तो इन समस्याओं को काफी हद तक कम कर सकते हैं। खेती की वह विधि जिसमें रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के बिना फसलों का उत्पादन किया जाता है। इनकी जगह सभी देशी नुस्खें अपनायें तो मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के साथ–साथ फसलों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। जैव उत्पादों जैसे–जीवमृत, बीजामृत, पंचगव्य, गोबर की खाद, केचुआँ खाद और गौमूत्र इत्यादि से कीट और व्याधियों को नियंत्रण किया जा सकता है। जिससे किसानों की आय दुगुनी हो तथा फसलों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

प्रमुख संरक्षक	:	**प्रो. जे. एस. सन्धू**
संरक्षक	:	**डॉ. बी. एल. ककरालिया**
समन्यवक	:	**डॉ. आर. एन. शर्मा**
प्रधान सम्पादक	:	**डॉ. के.सी. कुमावत**
तकनीकी परामर्श	:	**डॉ. सुदेश कुमार**
		डॉ. महेश दत्त
		डॉ. एम.आर. चौधरी
		डॉ. आर. पी. घासोलिया
		डॉ. डी. के. जाजोरिया
		डॉ. सन्तोष देवी सामोता

बुक पोस्ट

डाक टिकट

पत्रिका सम्बन्धी आप अपने सुझाव, आलेख एवं अन्य कृषि सम्बन्धी नवीनतम जानकारियाँ हमारे मेल jobnerkrishi@sknau.ac.in पर भेजे।

प्रकाशक एवं मुद्रक : निदेशालय, प्रसार शिक्षा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के लिए अम्बा प्रिन्टर्स, जोबनेर से मुद्रित।